छोटकी फूआ ! शब्दों के फूलों से भावों की श्रध्दांजलि

हज़ार दु:ख हों पर सब को फलांगती हुई , घर में हरदम किसी चिड़िया की तरह चहकने-फुदकने वाली , बात-बेबात बच्चों की तरह खिलखिलाने वाली , सर्वदा खुश रहने वाली , घर की कैसी भी महफ़िल हो हरदम उसे गुलज़ार करने वाली हमारी छोटकी फूआ आज नहीं रहीं। उन के बिना हमारे घर का कोई काम नहीं होता था। सुख हो , दु:ख हो , छोटकी फूआ हरदम हाजिर। गोरखपुर का गांव हो या लखनऊ। फूआ हर जगह होती थीं। सब से आगे। ऐसे जैसे सूर्य। ठीक उस फ़िल्मी गाने की तरह कि , आगे-आगे हम चलें यारों की बारातों में। सचमुच वह यारों की यार थीं। यारबास थीं। सब की सहेली। उम्र की बैरियर आड़े नहीं आई कभी उन के आगे। बच्चा हो , बूढा हो , जवान हो , सब के दिल की बातें सुनतीं। बीते 25 बरस से रक्षा बंधन उन के घर पर ही बीतता था। फूआ थीं , पर राखी बांधती थीं। बहन की कमी पूरी करती थीं। हम सभी पांचो भाई सपरिवार उन के यहां इकट्ठे होते थे। परिवार के इतने सारे लोगों को एक साथ देख कर उन की कालोनी के लोग फूआ से रश्क करते थे।

गोमती नगर के विराम खंड – 5 में उन का घर कालोनी की स्त्रियों से हमेशा आबाद रहता था। पूरी कालोनी की वह चहेती थीं। हर कोई उन के पास आता रहता था। किसी न किसी काम से। नहीं कुछ तो बतकुच्चन ही सही। किसी शाम को जब भी जाऊं , उन की विधान सभा सजी रहती थी। इसी लिए आज पूरी कालोनी उन्हें विदा करने के लिए उपस्थित थी। स्त्री-पुरुष , बच्चे सभी हाथ बांधे उपस्थित थे। जिन को वह नित्य प्रति कौरा खिलाती थीं , वह कुत्ते भी।

फूआ तो हमारी सात रहीं। जिन में दो को तो हम ने देखा भी नहीं कभी। बाक़ी पांच को देखा। सभी फूआ का स्नेह और आशीर्वाद मुझे खूब मिला है। लेकिन छोटकी फूआ , हम से 12 बरस ही बड़ी थीं। सो दोस्त भी थीं और हमारे हर सुख-दु:ख में बराबर की साझेदार थीं। आशीर्वाद बहुत लोग देते हैं पर जब छोटकी फूआ आशीर्वाद देती थीं तो जैसे दुनिया का सारा सुख उठा कर दे देती थीं। उन का रोम-रोम खिल उठता था। जैसे भीतर होता था , उन के वैसे ही बाहर। बचपन में उन के साथ खूब खेलने की यादें हैं। खेत में चना का साग खोंटने , बथुआ का साग खोंटने , मटर की छीमी तोड़ने , ऊंख तोड़ने और चूभने की यादें हैं। खेत में ही कंडे की आग में भुट्टा भून कर खाने की यादें हैं। कितना मन से तो वह कहतरी से सोंधी-सोंधी साढ़ी और खुरचुनी खुरुच-खुरुच कर खिलाती थीं।

नवनीत में लिपटी तरह-तरह की यादें हैं। छोटकी फूआ की यादों और बातों की बाजा बजाती एक पूरी

बारात है। एक पूरी नदी है। मन में सर्वदा बहती हुई। बहती रहेगी। औपचारिक रूप से बहुत कम पढ़ी-लिखी थीं छोटकी फुआ। शायद प्राइमरी भी पास नहीं थीं। पर पढ़ने की शौक़ीन बहुत थीं। इंटर में था तब प्रेमचंद का उपन्यास निर्मला पढ़ते हुए उन्हें देखा। उन से ही ले कर मैं ने निर्मला पढ़ी थी। कथा या उपन्यास पढ़ना उन का शौक था एक समय। अभी के दिनों में भी सारा अखबार रोज पढ़ती थीं। हम से भले कोई ख़बर या लेख छूट जाए , फूआ से नहीं छूटता था। संपादकीय , लेख , फ़िल्म , खेल आध्यात्म आदि सब कुछ पढ़ डालती थीं। जब कुछ ख़ास लगता उन्हें तो चहकते हुए चर्चा भी करतीं। रस ले-ले कर। स्वांग करने में , बतकही में भी उन का कोई जवाब नहीं था घर में। वह जहां बैठतीं , बच्चे बड़े सब उन्हें घेर लेते। उन्हें सुनने लगते।

ममत्व और आत्मीयता का सागर थीं हमारी छोटकी फूआ। अपनापन उन के रोएं-रोएं में बसता था। खूब खिलाना-पिलाना स्वभाव। सिंचाई विभाग की नौकरी में इंजिनियर रहने के कारण फूफा जी का ट्रांसफ़र होता रहता था। सो गोंडा , बलरामपुर , सुलतानपुर , आजमगढ़ आदि होते हुए 25 बरस से लखनऊ में रह रही थीं छोटकी फूआ। अभी जब पिछली बार गया तो वह मानीं नहीं , छड़ी ले कर किचेन में पहुंच गईं। मना करता रहा पर वह एक हाथ में छड़ी , दूसरे हाथ में खाने की चीज़ें ले कर उपस्थित हो गईं। इधर कुछ महीनों से बीमार चल रही थीं। कोरोना काल के कारण हम सब का आना-जाना भी बहुत ही कम हो गया था । फूफा जी ने अकेलेदम जितनी सेवा की फूआ की , महीनों की , शायद ही कोई पति कर पाएगा। आज भी सुबह वह फुआ को नहला-धुला कर नाश्ता करवा ही रहे थे कि नाश्ता करते-करते ही वह विदा हो गईं। आज दिन के तब ग्यारह बज चुके थे। अब फिर रात के ग्यारह बज गए हैं। इन बारह घंटों में ही क्या से क्या हो गया। कल ही सोचा था कि कल छोटकी फूआ से मिलने जाऊंगा। पर क्या पता था कि जाऊंगा तो सही पर मिलने नहीं , विदा करने जाऊंगा। अंतिम विदा !

जैसे आंगन के बीच में तुलसी होती है न , हमारी छोटकी फूआ ऐसी ही थीं। लोग तुलसी को घेरे ही रहते हैं। पूजते ही रहते हैं। घी के दिये जलाते रहते हैं , हर शाम। ऐसी ही तुलसी थीं हमारी छोटकी फूआ। उन का नाम भी यथा नाम तथा गुण ही था। तुलसी दूबे। प्रणाम करता हूं। बारंबार प्रणाम करता हूं। ससुराल में भी छोटकी फूआ का बड़ा मान था। फूफा जी तो अतुलनीय प्रेम करते थे उन से लेकिन उन के देवर लोग भी उन्हें मां की तरह ही मान देते रहे हैं। देवर लोगों के बच्चे भी उन्हें बड़ी मम्मी ही कहते हैं और पूरे मान के साथ। उन के सास-ससुर भी बेटी की तरह मानते थे। मैं शायद नौवीं में पढता था तब। पहली बार छोटकी फूआ के गांव गया था। उन का संयुक्त परिवार था गांव में। तीन सास , तीन ससुर। कई सारे देवर , देवरानी , जेठ , जेठानी भी। खूब सारे बच्चे। पर छोटकी फूआ की तारीफ़ में सब के सब। उन के एक बड़े ससुर जाने किस बात पर कहने लगे कि सभी बहुओं की आवाज़ कभी न कभी सुन चुका हूं पर मजाल है कि बैदौली वाली दुलहिन की आवाज़ भी कभी सुन पाया होऊं , इतने सालों में। बैदौली वाली मतलब हमारी छोटकी फूआ। उन दिनों गांव में लोग बहू के गांव के नाम से पुकारते थे। बैदौली हमारे गांव का नाम है। छोटकी फूआ के गांव में लोग मेरा परिचय बैदौली वाली के भतीजे के रुप में देते थे। और बैदौली वाली का नाम आते ही मेरा मान तुरंत बढ़ जाता था।

काल्हीपार नाम के उस पूरे गांव में बैदौली वाली का नाम इतनी इज्जत से लिया जाना बहुत गदगद कर गया था। तब टीनएज था अब एक उम्र हो गई है पर सचमुच इस बैदौली वाली ने हमारे परिवार और

गांव का मान कभी भी मुश्किल में नहीं आने दिया। तमाम विपत्तियां ओढ़ लीं लेकिन बैदौली की आन और मान पर कभी कोई सवाल नहीं उठने दिया मरते दम तक। शालीनता , विनम्रता और संस्कार का अदभुत संगम थीं हमारी छोटकी फूआ। उन के ममत्व के सागर ने अपने-पराए सभी को अपने स्नेह और सम्मान की डोर में सर्वदा बांधे रहा। सूर्य बन कर वह सब के जीवन में प्रकाश परोसती रहीं। हमारी अम्मा की भी अभिन्न सखी थीं वह। छोटकी भौजी कहती ज़रूर थीं वह हमारी अम्मा को पर ननद बन कर नहीं , सखी बन कर ही रहीं सर्वदा अम्मा के साथ। अम्मा के साथ का वह उन का अनुराग ही था कि वह हम सभी भाइयों को अपने ममत्व के आंचल में सर्वदा बांधे रहती थीं। छोटकी फूआ के मन में कभी भी किसी के लिए कोई कटुता नहीं देखी। हर किसी के लिए सर्वदा स्नेह और सम्मान ही उन के पास रहा।

सोचता हूं , अब हमारा रक्षा बंधन वैसे कब मनेगा , जैसे फूआ के रहने पर उन के आशीर्वाद के साथ मनता था। हमारे घर की हंसी और खुशी छोटकी फूआ के बिना कैसे खनकेगी। किसी बताशे की तरह , किसी मिसरी की तरह हमारे मन में उन की याद तो सर्वदा घुलती रहेगी मन की अलगनी पर टंगी रहेगी। यादों की नदी बहती रहेगी। पर चिड़िया की तरह चहकने-फुदकने वाली , बात-बेबात बच्चों की तरह खिलखिलाने वाली , सर्वदा खुश रहने वाली हमारी छोटकी फूआ अब हमारे बीच नहीं होंगी। घर की कैसी भी महफ़िल हो हरदम उसे गुलज़ार करने वाली हमारी छोटकी फूआ हमारी किसी महफ़िल में अब नहीं होंगी। राम नाम सत्य जाने कितनी बार बोलना हुआ है , जीवन में। पर आज यह पहली बार ही हुआ छोटकी फूआ का शव कंधे पर लिए राम नाम सत्य बोलते हुए ही मैं रोने लगा। रोता रहा और राम नाम सत्य बोलता रहा। फिर बोलते-बोलते , रोते-रोते हुए आवाज़ रुंध गई। अचानक चुप हो गया। क्या ऐसे भी राम नाम सत्य होता है , छोटकी फूआ !हंसते-हंसाते भी कोई रुलाता है भला !

(दयानंद पाण्डेय वरिष्ठ लेखक व पत्रकार हैं व समसामयिक घटनाक्रमों से लेकर साहित्यिक व राजनीतिक विषयों पर लिखते हैं)

साभार- http://sarokarnama.blogspot.com/2021/06/blog-post_14.html